महाजनपद काल में लोक-उत्सवों का स्वरूप

डॉ. नवीन गिडियन
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष - इतिहास
शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

अति प्राचीन युग से मनुष्य के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में विभिन्न उत्सवों का बड़ा महत्व रहा है। भारतीय साहित्य में वैदिक युग से ही उत्सवों के उल्लेख उपलब्ध होते हैं। वैदिक वांग्मय में उपलब्ध एतद्विषयक सामग्री से विदित होता है कि भारतीय आर्य बड़े उत्सव-प्रेमी थे और वे समय-समय पर आनन्द मनाने के लिए उत्सवों एवं समारोहों का अयोजन किया करते थे। उत्तरकालीन साहित्य में भी उत्सव मनाने के अनेक वर्णन मिलते हैं। उत्सव के आयोजन में जनता के साथ राज्य के सक्रिय सहयोग के भी प्रमाण उपलब्ध होते हैं। रामायण के अनुसार उत्सव तथा समाज राज्य की लोकप्रियता का संवर्द्धन करते हैं। कौटिल्य का कथन है कि राज्य को जनता के मनोरंजनार्थ यात्रा, समाज, उत्सव और प्रवहण का आयोजन करना चाहिए।[1] अशोक के अभिलेख समाज नामक उत्सव का उल्लेख करते हैं। समाज में उन दिनों धार्मिक अथवा सामाजिक समारोहों पर एकत्र होने वाले जनसमूह का बोध होता है। कलिंगाधिपति खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख से ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने सफल विजय अभियान के उपलक्ष्य में कलिंगवासियों के मनोरंजनार्थ एक महोत्सव का अयोजन किया जिसमें मल्लयुद्ध, वादन गायन तथा नृत्यादि के प्रदर्शन किये गये।

बौद्ध-पिटकों तथा जैन-सूत्रों से विदित होता है कि तत्कालीन समान में बड़ी धूम-धाम से धार्मिक एवं लौकिक उत्सव मनाये जाते थे। जैन-सूत्रों[2] से ज्ञात होता है कि उन दिनों लोग विभिन्न देवताओं, जैसे - इन्द्र, स्कन्द, रूद्र, मुकुन्द आदि की पूजा तथा यक्ष, नाग, स्तूप, मन्दिर, वृश, नदी, सरोवर इत्यादि की पूजा के लिए समय-समय पर समारोहों का अयोजन करते थे। इन उत्सवों की प्रमुख विशेषतएँ थीं - विशिष्ट भोजन, नृत्य, संगीत आदि। पालि-पिटक में उत्सव मनाने के लिए एकत्र जनसमूह के लिए समज्ज शब्द प्रयुक्त हुआ है जो पाणिनी[3] के समज्या का रूपान्तर है। समज्या का अर्थ है - 'वह स्थान जहाँ लोक एकत्र होते हैं।' चुल्लवग में गिरज्जसमज्ज का उल्लेख आया है जो राजगृह में किसी पहाड़ी पर मनाया गया उत्सव था।[4] यह संभवतः धार्मिक उत्सव था तभी तो उसे पहाड़ी पर मनाया गया। हो सकता है जनसाधारण के अनुसार उस पहाड़ी को किसी देवता का वासस्थान माना जाता होगा। इस उत्सव के वर्णन में यह भी कहा गया है कि राज्य के उच्च पदाधिकारियों को भी आमंत्रित कर उनके लिए विशेष आसन की व्यवस्था की गयी थी। सिगालोवाद - जातक के अनुसार समज्ज में नृत्य, गायन, वादन, आख्यान, ऐंन्द्रजालिक खेल, रस्सी पर चलने आदि के प्रदर्शन किये जाते थे। जातकों में समज्ज का प्रयोग किया गया है। मनोरंजनार्थ एकत्र जनसमूह तथा मेले के अर्थ में। समज्ज के आयोजन प्रायः मांगलिक अवसर पर हुआ करते थे। जातक कथाओं में उत्सव को नक्खत भी कहा गया है जिससे प्रतीत होता है कि समज्ज उस दिन मनाया जाता था जो नक्षत्र-विचार से धार्मिक कृत्य के लिए शुभ होता था। कभी-कभी समाज का आयोजन राजांगण में किया जाता था[5] और उस अवसर पर वहाँ मुख्य रूप से मल्लयुद्ध होता था।[6] धनुर्वेद, हस्ति-व्यायाम, घुड़दौड़, नाटक, संगीत प्रतियोगिताएँ आदि द्वारा जनता का

ISSN 2395-051X

मनोरंजन किया जाता था।[7] ऐसे उत्सव को वास्तव मे लौकिक कहा जा सकता है और इनकी तुलना उस उत्सव से की जा सकती है जो चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा राजधानी में प्रति-वर्ष मनाया जाता था। उसमें भेड़, जंगली सांड़, हाथी, गैंडे आदि की लड़ाइयाँ और रथदौड़ इत्यादि का आयोजन होता था। रथदौड़ में प्रयुक्त रथ विशेष प्रकार का होता था जिसमें दो बैलों के मध्य एक घोड़ा जोता जाता था।[8]

पालि-निकाय से ज्ञात होता है कि उन दिनों मनाये जाने वाले महोत्सवों का स्वरूप कई दिनों तक चलने वाले मेलों जैसा हो गया था। इन मेलों में खेल-तमाशे देखने के लिए लोग बड़ी संख्या में जमा हो जाते थे। दीर्घ-निकाय के अनुसार दर्शकों को मनोरंजन के अनेक कार्यक्रमों को देखने का सौभाग्य प्राप्त होता था, जैसे-नृत्य, गीत, बाजा, नाटक, लीला, ताली, ताल देना, घड़ा पर तबला बजाना, समूहगान, लोहे की गोली का खेल, बाँस का खेल, धोपन (उस समय का एक खेल जिसे चांडाल दिखाया करते थे), हस्ति-युद्ध, अश्व-युद्ध, महिष-युद्ध, वृषभ-युद्ध, बकरों का युद्ध, भेंड़ों का युद्ध, मुर्गों की लड़ाई, लाठी के खेल, मुष्टि-युद्ध, कुश्ती, मार-पीट के खेल, सेना और लड़ाई के चालें इत्यादि।[9] मेले में नट और ऐंद्रजालिक के नृत्य तथा खेल बड़े ही मनोरंजक हुआ करते थे जिसमें लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते थे।[10] नटों के खेल साहसिक तथा खतरनाक हुआ करते थे। वे रज्जु-नृत्य करते और भालों के ऊपर छलाँग मारते जिसे देखकर दर्शकों को रोमांच हो जाता था।[11] कभी-कभी तो भाले पर गिर जाने से नट की मृत्यु ही हो जाती थी। सपेरों के खेल भी दर्शनीय होते थे।[12] शंख फूकनेवाले (शंख-धमक)[13] तथा भेरीवादक[14] वातावरण को संगीतमय बना देते थे। लोग मस्ती में आकर और माला, इत्र, विलेपन का खुलकर उपयोग करते तथा मद्य-माँस और मछली का जी भर सेवन करते थे।[15] जैन सूत्रों के अनुसार उत्सवों में भोजन, मद्यपान और विलासिता के कर्मों की प्रमुखता रहती थी[16]

मेले प्रायः नगरों में लगते थे जिसे देखने के लिए निकटवर्ती ग्रामों के निवासी बड़ी संख्या में एकत्र हुआ करते थे। राजधानियों में उत्सव मनाने की घोषणा राजाज्ञा से भेरी-घोष द्वारा की जाती थी। नक्षत्र-भेरीघोष सुनते ही सभी नगरवासी आनन्द मनाने के लिए घर से निकल पड़ते थे।[17] लोग अपने दैनिक व्यवसाय बन्द कर खाते, पीते और इष्ट-मित्रों को खिलाते-पिलाते थे।[18] ब्राह्मणों का भोजन सत्कार माँस-भात से होता था और इष्ट-देवों की पूजा की जाती थी।[19] जैन-सूत्रों के अनुसार ब्राह्मणों, श्रमणों, अतिथियों, निर्धनों तथा भिखमंगों को भोजन कराया जाता था।[20] राजधानी में पर्व और मेले के अवसर पर बड़ी धूमधाम देखने को मिलती थी। नगरवासी अपने नगर को यथासंभव अलंकृत करने का प्रयास करते थे। उत्सव की शोभावृद्धि में राजा भी अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करते थे। दुम्मेध-जातक में राजगृह के एक उत्सव का वर्णन इस प्रकार मिलता है - 'एक उत्सव के दिन संपूर्ण राजगृह नगर को देवनगर की भाँति सजाया गया। मगधराज ने एक पूर्ण अलंकृत मंगलहस्ति पर आरूढ़ होकर अपने अनुचरों के साथ संपूर्ण नगर की प्रदक्षिणा की थी।'

जातकों के अनुसार मेले प्रायः एक सप्ताह तक चलते थे।[21] कई मेले तो मास भर लगे रहते थे और उन दिनों लोग मौज में रहते थे।[22]

सन्दर्भ

1. अर्थशास्त्र 1।21
2. S.B. E, 22 पृ. 92
3. अष्टाध्यायी, 3।3।99; भाष्य 2।152 - समजन्ति तस्यां समज्या।
4. चुल्लवग्ग, 5।2।6 ; 6।2।7

5. जातक, 2, पृ. 253
6. जातक, 3, पृ. 160; 4, पृ. 81-82; 6, पृ. 277
7. जातक, 3, पृ. 46-49, 253; 5 पृ. 282; 6, पृ. 275
8. मुखर्जी, रधाकुमुद-अशोक, पृ. 129
9. ब्रह्मजाल-सुत्त।
10. जातक, 4, पृ. 324
11. जातक, 1, पृ. 430
12. जातक, 2, पृ. 267; 3, 198
13. जातक, 1, पृ. 284
14. जातक, 1, पृ. 283
15. जातक, 2, पृ. 248; 3, पृ. 435
16. S.B. E, 22 पृ.94-95
17. जातक, 1, पृ. 250
18. जातक, 6, पृ. 328
19. वही
20. S.B. E, 22 पृ.92
21. जातक, 3, पृ. 434
22. जातक, 6, पृ. 329